कुण्डलिनी साधना से प्रज्ञा और प्रखरता का जागरण
– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

कुण्डलिनी विज्ञान में मूलाधार को योनि और सहस्रार को लिंग कहा गया है। यह सूक्ष्म तत्त्वों की गहन चर्चा है। इस वर्णन में काम क्रीड़ा एवं श्रृंगारिकता का काव्यमय वर्णन तो किया गया है, पर क्रिया प्रसंग में वैसा कुछ नही है। तन्त्र ग्रंथो में उलट भाषियों की तरह मद्य, माँस, मीन, मुद्रा और पांचवा मैथुन भी साधना प्रयोजनों में सम्मिलित किया है। यह दो मूल सत्ताओं के संभोग का संकेत है। शारीरिक रति कर्म से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। यों यह सूक्ष्म अध्यात्म सिद्धान्त रति कर्म पर भी प्रयुक्त होते, दाम्पत्य स्थिति पर भी लागू होते हैं। दोनों के मध्य समता की, आदान–प्रदान की स्थिति जितनी ही संतुलित होगी उतना ही युग्म को अधिक सुखी, सन्तुष्ट समुन्नत पाया जायेगा।

मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति शिवलिंग के साथ लिपटी हुई प्रसुप्त सर्पिणी की तरह पड़ी रहती है। समुन्नत स्थिति में इसी मूल स्थिति का विकास हो जाता है। मूलाधार मल मूत्र स्थानों के निष्कृष्ट स्थान से ऊँचा उठकर मस्तिष्क के सर्वोच्च स्थान पर जा विराजता है। छोटा सा शिवलिंग मस्तिष्क में कैलाश पर्वत बन जाता है। छोटे से कुण्ड को मान सरोवर रूप धारण करने का अवसर मिलता है। प्रसुप्त सर्पिणी जागृत होकर शिव कंठ से जा निपटती है और शेषनाग के पराक्रमी रूप में दृष्टिगोचर होती है। मुँह बन्द कली खिलती है और खिले हुए शतदल कमल के सहस्रार के रूप में उसका विकास होता है। मूलाधार में तनिक सा स्थान था, पर ब्रह्मरंध्र का विस्तार तो उससे सौ गुना अधिक है।

सहस्रार को स्वर्ग लोक का कल्पवृक्ष, प्रलय काल में बचा रहने वाला अक्षय वट, गीता का ऊर्ध्व मूल अध:शाखा वाला अश्वत्थ,

भगवान बुद्ध को महान बनाने वाला बोधि वृक्ष कहा जा सकता है। यह समस्त उपमाएँ ब्रह्मरंध्र में निवास करने वाले ब्रह्म बीज की ही हैं। वह अविकसित स्थिति में मन बुद्धि के छोटे मोटे प्रयोजन पूरे करता है, पर जब जागृत स्थिति में जा पहुँचता है तो सूर्य के समान दिव्य सत्ता सम्पन्न बनता है। उसके प्रभाव से व्यक्ति और उसका सम्पर्क क्षेत्र दिव्य आलोक से भरा पूरा बन जाता है।

ऊपर उठना पदार्थ और प्राणियों का धर्म है। ऊर्जा का, ऊष्मा का स्वभाव ऊपर उठना और आगे बढ़ना है। प्रगति का द्वार बन्द रहे तो कुण्डलिनी शक्ति कामुकता के छिद्रों से रास्ता बनाती और पतनोन्मुख रहती है। किन्तु यदि ऊर्ध्वगमन का मार्ग मिल सके तो उसका प्रभाव परिणाम प्रयत्नकर्त्ता को परम तेजस्वी बनने और अन्धकार से प्रकाश उत्पन्न कर सकने की क्षमता के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

कुण्डलिनी की प्रचण्ड क्षमता स्थूल शरीर में ओजस्, सूक्ष्म शरीर में तेजस और कारण शरीर में वर्चस् के रूप में प्रकट एवं परिलक्षित होती है। समग्र तेजस्विता को इन तीन भागों में दृष्टिगोचर होते देखा जा सकता है। इस अन्तःक्षमता का एक भोंडा सा उभार और कार्य काम वासना के रूप में देखा जा सकता है। कामुकता अपने सहयोगी के प्रति कितना आकर्षण आत्म भाव उत्पन्न करती है। संभोग कर्म में सरलता अनुभव होती है। संतानोत्पादन जैसी आश्चर्यजनक उपलब्धि सामने आती है। यह एक छोटी सी इन्द्रिय पर इसकी अन्तःक्षमता का आवेश छा जाने पर उसका प्रभाव कितना अद्‌भुत होता है यह आँख पसारकर हर दिशा में देखा जा सकता है। मनुष्य का चित्त, श्रम, समय एवं उपार्जन का अधिकांश भाग इसी उभार को तृप्त करने का ताना-बाना बुनने में बीतता है। उपभोग की प्रतिक्रिया संतानोत्पादन के उत्तरदायित्व निभाने के रूप में कितनी मंहगी और भारी पड़ती है यह प्रकट तथ्य किसी से छिपा नहीं है। यदि इसी

सामर्थ्य को ऊर्ध्वगामी बनाया जा सके तो उसका प्रभाव देवोपम परिस्थितियाँ सामने लाकर खड़ी कर सकता है।

प्राय: जननेन्द्रियों को काम वासना एवं रति प्रवृति के लिए उत्तरदायी माना जाता है। पर वैज्ञानिक गहन अन्वेषण से यह तथ्य सामने आता है कि नर-नारी के प्रजनन केन्द्रों का सूत्र संचालन मेरुदण्ड के सुषुम्ना केन्द्र से होता है। यह केन्द्र नाभि की सीध में है। हैनरी आस्ले कृत 'नोट्स आन फिजयालोजी' ग्रन्थ में इस सन्दर्भ में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। उसमें उल्लेख है कि-नर नारियों के प्रजनन अंगों के संकोच एवं उत्तेजना का नियन्त्रण मेरुदंड के 'लम्बर रीजन' (निचले क्षेत्र) में स्थित केद्रों से होता है। इस दृष्टि से कामोत्तेजना के प्रकटीकरण का उपकरण मात्र जननेन्द्रिय रह जाती है। उसका उद्गम तथा उद्भव केन्द्र सुषुम्ना संस्थान में होने से वह कुण्डलिनी की ही एक लहर सिद्ध होती है। यह प्रवाह जननेन्द्रिय की ओर उच्च केन्द्रों को मोड़ देने की प्रक्रिया ही इस महाशक्ति की साधना के रूप में प्रयुक्त होती है।

कामेच्छा एक आध्यात्मिक भूख है। वह मिटाई नही जा सकती। निरोध करने पर वह और भी उग्र होती है। बहते हुए पानी को रोकने से वह धक्का मारने की नई सामर्थ्य उत्पन्न करता है। आकाश में उड़ती हुई बन्दूक की गोली स्वयमेव शान्त होने की स्थिति तक पहुँचने से पहले जहाँ भी रोकी जायेगी वही आघात लगावेगी और छेद कर देगी। काम शक्ति को बलपूर्वक रोकने से कई प्रकार के शारीरिक और मानसिक उपद्रव खड़े होते हैं इस तथ्य पर फ्रायड से लेकर आधुनिक मनोविज्ञानियों तक ने अपने-अपने ढंग से प्रकाश डाला है और उसे सृजनात्मक प्रयोजनों में नियोजित करने का परामर्श दिया है। एक ओर से मन हटकर दूसरी ओर चला जाय, एक का महत्व गिरा कर दूसरे की गरिमा पर विश्वास कर लिया जाय, तो अकांक्षा

एवं अभिरुचि का प्रवाह मोड़ने में विशेष कठिनाई उत्पन्न नही होती। ब्रह्मचर्य का वैज्ञानिक स्वरूप यही है। अतृप्ति-जन्य अशान्ति से बचने, क्षमता का सदुपयोग करके सत्परिणामों का लाभ लेने का एक ही उपाय है कि कामेच्छा प्रवृत्ति को सृजनात्मक दिशा में मोड़ा जाय। कलात्मक प्रयोजनों में संलग्न होने से उसके भौतिक लाभ मिल सकते है। अध्यात्म क्षेत्र में उसे भाव संवेदना के लिए भक्ति भावना के रुप में तथा प्रबल पुरुषार्थ की तरह तपोमयी योग साधना में लगाया जा सकता है। दोनों का समन्वय कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया में समन्वित पद्धति के रूप में किया जा सकता है। सहस्रार चक्र भक्ति भावना का और मूलाधार चक्र प्राण संधान का केन्द्र है। दोनों को प्रसुप्त कर साहसिक संवेदना उभारना कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया अपनाने से सहज सम्भव हो सकता है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह जीवन के चार परम प्रयोजन हैं। 'काम' अर्थ सामान्यतया रति कर्म समझा जाता है, पर परम प्रयोजनों में उसका अर्थ विनोद, उल्लास, आनन्द माना जाता है। यह रसानुभूति दो पूरक तत्त्वों के मिलन द्वारा उपलब्ध होती है। ऋण और धन विधुत प्रवाह मिलने से गति उत्पन्न होती है। रयि और प्राण तत्त्व के मिलन से सृष्टि के प्राणि उत्पादनों की सृष्टि होती है। प्रकृति पुरुष की तरह नर और नारी को भी परस्पर पूरक माना गया है। मानवी सत्ता में भी दो पूरक सत्ताएँ काम करती हैं इन्हें नर और नारी का प्रतिनिधि मानते है। नारी सत्ता मूलाधार में अवस्थित कुण्डलिनी है और नर तत्त्व सहस्रार स्थित परब्रह्म है। इन्हीं को शक्ति और शिव भी कहते है। इनका मिलन ही कुण्डलिनी जागरण का लक्ष्य है। इस संयोग से उत्पन्न दिव्य धारा को भौतिक क्षेत्र में ऋद्धि-सिद्धि और आत्मिक क्षेत्र में स्वर्ग मुक्ति कहते हैं। आत्म साक्षात्कार एवं ब्रह्म निर्माण का लक्ष्य भी यही है।

अथर्व वेद में भगवान से काम रूप में जीवन में अवतरित होने की प्रार्थना की गई है।

यास्ते शिवास्तवः काम भद्रायाभिः सत्यं भवति यद्वृणीषे
ताभिष्ट्वमस्मां अभि संविशस्वान्यत्रपापी रपवेशया धियः।

हे परमेश्वर तेरा काम रूप भी श्रेष्ठ और कल्याण कारक है उसका चयन असत्य नहीं है। आप काम रूप से हमारे भीतर प्रवेश करें और पाप बुद्धि से छुड़ाकर हमें निष्पाप उल्लास की ओर ले चलें।

कुण्डलिनी महाशक्ति की प्रकृति का निरूपण करते हुए शास्त्रकारों ने उसके लिये 'काम बीज' एवं 'काम कला' दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों का अर्थ कामुकता, कामक्रीड़ा या काम शास्त्र जैसा तुच्छ अर्थ यहाँ नहीं लिया गया है। इस शक्ति की प्रकृति उत्साह एवं उल्लास उत्पन्न करना है। यह शरीर और मन की उभय-पक्षीय अग्रगामी स्फुरणाएँ हैं। यह एक मूल प्रकृति हुई। दूसरी पूरक प्रकृति। मूलाधार को काम बीज कहा गया है और सहस्रार को ज्ञान बीज। दोनों के समन्वय से विवेक युक्त क्रिया बनती है। इसी पर जीवन का सर्वतोमुखी विकास निर्भर है। कुण्डलिनी साधना से इसी सुयोग संयोग की व्यवस्था बनाई जाती है।

प्रत्येक शरीर में नर और मादा दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं। शरीर शास्त्रियों के अनुसार प्रत्येक प्राणी में उभयपक्षीय सत्ताएँ मौजूद हैं। इनमें से जो उभरी रहती है उसी के अनुसार शरीर की लिंग प्रकृति बनती है। संकल्प पूर्वक इस प्रकृति को बदला भी जा सकता है। छोटे प्राणियों में उभयलिंगी क्षमता रहती है। वह एक ही शरीर से समयानुसार दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी कर लेता है।

मनुष्यों में ऐसे कितने ही पाये जाते है जिनकी आकृति जिस वर्ग की है, प्रकृति उससे भिन्न वर्ग की होती है। नर को नारी की और नारी को नर की भूमिका निबाहते हुए बहुत बार देखा जाता है। इसके

अतिरिक्त लिंग परिवर्तन की घटनाएँ भी होती रहती है। शल्य क्रिया के विकास के साथ-साथ अब इस प्रकार के उलट-पुलट होने के समाचार संसार के कोने-कोने से मिलते रहते है। अमुक नर नारी बन गया और अमुक नारी ने नर के रूप में अपना गृहस्थ नये ढंग से चलाना आरम्भ कर दिया।

दोनों में एक तत्त्व प्रधान रहने से ढर्रा तो चलता रहता हैं, पर एकांगीपन बना रहता है। नारी जैसे कोमलता, सहृदयता, कलाकारिता, भावात्मक तत्त्व का नर में जितना अभाव होगा उतना ही वह कठोर, नीरस, निष्ठुर रहेगा और अपनी बलिष्ठता, मनस्विता के पक्ष के सहारे क्रूर, कर्कश बनकर अपने और दूसरों के लिए अशान्ति ही उत्पन्न करता रहेगा। नारी में पौरुष का अभाव रहा तो वह आत्म हीनता की ग्रंथियों से ग्रसित अनावश्यक संकोच में डूबी, कठपुतली या गुड़िया बनकर रह जायेगी। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों ही पक्षों में सन्तुलित मात्रा में रयि और प्राण के तत्त्व बने रहें। कोई पूर्ण एकांगी बनकर न रह जाय। जिस प्रकार बाह्य जीवन में नर-नारी सहयोग की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार अन्तःक्षेत्र में भी दोनों तत्त्वों का समुचित विकास होना चाहिए। तभी एक पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सम्भव हो सकेगा और कुण्डलिनी जागरण से उभयपक्षीय विकास की पृष्टभूमि बनती है।

मूलाधार चक्र में काम शक्ति को स्फूर्ति, उमंग एवं सरसता का स्थान माना गया है। इसलिए उसे काम संस्थान कहते हैं। जहाँ तहाँ उसे योनि संज्ञा भी दी गई है। नामकरण जननेन्द्रिय के आकार के आधार पर नही, उस केन्द्र में सन्निहित 'रयि' शक्ति को ध्यान में रखकर किया गया है।

आधाराख्ये गुदास्थाने पंकज च चतुर्दलम्।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवंदिता।

गोरक्ष पद्धति

गुदा के समीप मूलाधार कमल के मध्य 'योनि' है। उसे कामाख्या पीठ कहते है। सिद्ध योगी इसकी उपासना करते हैं।

अपाने मूल कन्दाख्यं काम रूप च तज्जगुः।
तदेव वहिन कुण्डस्यात तत्त्व कुण्डलिनी तथा।।

योग राजोपनिषद्

मूलाधार चक्र में कन्द है। उसे काम रूप, काम बीज, अग्नि कुण्ड कहते हैं। यही कुण्डलिनी का स्थान है।

यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते।
अस्यां यों जायते वह्नि स कल्याण प्रदुच्यते ।।

–कात्यायन स्मृति

गुह्य स्थान में देव योनि है। उससे जो अग्नि उत्पन्न होती है उसे परम कल्याणकारिणी समझना चाहिए।

आधार प्रथम चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
योनिस्थानं द्वयोमध्ये काम रूपं निगद्यते।।

गोरक्ष पद्धति

पहला चक्र मूलाधार है दूसरा स्वाधिष्ठान। दोनों के मध्य योनि स्थान है। उसे काम रूप भी कहते है।

ब्रह्मा का प्रत्यक्ष रूप प्रकृति और अप्रत्यक्ष भाग पुरुष है। दोनों के मिलने से ही द्वैत का अद्वैत में विलय होता है। शरीरगत दो चेतन धाराएँ रयि और प्राण कहलाती है। इनके मिलन संयोग से सामान्य प्राणियों को उस विषयानन्द की प्राप्ति होती है, जिसे प्रत्यक्ष जगत की सर्वोपरि सुखद अनुभूति कहा जाता है। ॠण और धन विद्युत घटकों के मिलन से चिनगारियाँ निकलती और शक्ति धारा बहती है। पूरक घटकों की दूरी समाप्त होने पर सरसता और सशक्तता की

अनुभूति प्राय: होती रहती है। चेतना के उच्चस्तरीय घटक मूलाधार और सहस्त्रार के रूप में विलग पड़े रहे, तभी तक अन्धकार की, नीरस गतिहीनता की स्थिति रहेगी। मिलन का प्रतिफल सम्पदाओं और विभूतियों के, ऋद्धि और सिद्धि के रूप में सहज ही देखा जा सकता है। इन उपलब्धियों की अनुभूति में आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है और उसकी सम्वेदना ब्रह्मानन्द के रूप में होती है, इस आनन्द को विषयानन्द से असंख्य गुने उच्चस्तर का माना गया है।

शिव पार्वती विवाह का प्रतिफल दो पुत्रों के रूप में उपस्थित हुआ था। एक का नाम गणेश दूसरे का कार्तिकेय। गणेश को 'प्रज्ञा' का देवता माना गया है और स्कन्द को शक्ति का। दुर्दान्त दस्यु असुरों को निरस्त करने के लिए कार्तिकेय का अवतरण हुआ था। उनके इस पराक्रम ने संत्रस्त देव समाज का परित्राण किया। गणेश ने मांस पिण्ड मनुष्य को सद्ज्ञान अनुदान देकर उसे सृष्टि का मुकुटमणि बनाया। दोनों ब्रह्मकुमार शिव-शक्ति के समन्वय के प्रतिफल है। शक्ति कुण्डलिनी, शिव सहस्रार दोनों का संयोग कुण्डलिनी जागरण कहलाता है। यह पुण्य प्रक्रिया सम्पन्न होने पर अन्तरङ्ग ऋतम्भरा प्रज्ञा से और बहिरङ्ग प्रखरता से भर जाता है। प्रगति के पथ पर इन्हीं दो चरणों के सहारे जीवन यात्रा पूरी होती है और चरम लक्ष्य की पूर्ति सम्भव बनती है।

***

-गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार